समकालीन हस्तक्षेप
साहित्य, समाज और संस्कृति की पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध-पत्रिका
SJIF 2023 = 7.858, ISSN: 2277-7857
वर्ष: 18, अंक: 1, जुलाई - सितंबर 2024
ई-मेल: issn22777857@gmail.com
वेबसाइट: www.hastakshep.co.in

कामायनी में व्यक्त पर्यावरण चिंतन

डॉ. दीपक सिंह
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़
ई-मेल: kamini31284@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में कामायनी की मिथकीय कथा के भीतर संचालित हो रहे आधुनिक जीवन की समस्याओं का अनुशीलन किया गया है। कामायनी अपनी पूरी निर्मिति में एक आधुनिक महाकाव्य है जो पूंजीवादी आधुनिक सभ्यता की विद्रूपताओं को उजागर करती है। आज मनुष्य के समक्ष पर्यावरण की सुरक्षा एक बड़ी चिंता के रूप में सामने है। साहित्य प्रकृति के सौन्दर्य चित्रण की जगह पर्यावरणीय चिंतन के दौर में प्रवेश कर चुका है। कामायनी का महत्व इस बात में है कि उसने सबसे पहले ऐतिहासिक दृष्टि के साथ इस विषय को उठाया। प्रसाद द्वारा दिया गया समाधान भले ही यथार्थ से दूर आदर्शवादी हो लेकिन समस्या को पहचानने की उनकी ऐतिहासिक दृष्टि काबिल-ए-तारीफ है।

बीज-शब्द: *पर्यावरण, पूंजीवाद, संकट, प्रकृति, सभ्यता, विषमता, प्राणिजगत, स्मृति-लोप।*

प्रस्तावना

वर्तमान समय में पर्यावरण-संकट पूरी दुनिया के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रूप में सामने है। कहीं भयानक बाढ़ है,कहीं सूखा पड़ा है,तापमान निरंतर बढ़ता जा रहा है और इनके कारण हमारे अपने बनाये हुए हैं। मनुष्य की लालच का अभी भी कोई ओर-छोर दिखाई नहीं पड़ रहा,जबकि इसके परिणाम लगातार हमारे सामने हैं। प्रकृति हमें निरंतर सचेत कर रही है लेकिन हम उस पर कान न देते हुए सुख और ऐश्वर्य की असीम आकांक्षा से ग्रस्त हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य की उपादेयता पर बार-बार विचार किये जाने की आवश्यकता महसूस की जाती रही है क्योंकि साहित्य ने शुरुआत से ही प्रकृति के साथ एक रिश्ता बनाए रखा है। यह रिश्ता सह-अस्तित्व का रिश्ता है, जहाँ प्रकृति और मनुष्य दोनों का एक दूसरे से संवाद चलता रहता है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से ही प्रकृति एक अनिवार्य तत्व के रूप में शामिल हैं। भक्तिकाल और रीतिकाल में भी प्रकृति साहित्य का अनिवार्य हिस्सा है लेकिन आधुनिक –काल में उसके स्वरूप में परिवर्तन साफ़ दिखाई पड़ता है। मध्यकाल तक प्रकृति का चित्रण उपादान के रूप में हुआ था ,वह मानव के मनोभावों के अनुसार परिवर्तित होती रही है। आधुनिकता के आगमन के साथ बढ़ते औद्योगीकरण और पूंजीवादी प्रभुत्त्व ने प्रकृति के अबाध दोहन की परम्परा शुरू की। जो प्रकृति अभी तक मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही एक सच्चे साथी की तरह उसके हर सुख-दुःख में उसके साथ शामिल थी,उसे मुनाफादयिनी समझा जाने लगा। मनुष्य की इसी प्रवृत्ति ने पर्यावरण-संकट को जन्म दिया। प्रकृति पर बढ़ते दबाव के फलस्वरूप उसके मनोहारी रूप से अलग रौद्र रूप के दर्शन भी हुए। वह साहित्य ही था जिसने पूंजीवादी सभ्यता से आने वाले खतरों की आहट सुन ली थी। प्रकृति के रौद्र रूप को रेखांकित करने वाले पहले कवि जयशंकर प्रसाद हैं।

शोध-विस्तार

हिन्दी साहित्य में शुरू हुई प्रकृति चित्रण की यात्रा जयशंकर प्रसाद की कामायनी में जाकर पर्यावरण-चिंतन में तब्दील हो जाती है। कामायनी में पहली बार उसका आक्रामक रूप दिखाई पड़ता है। प्रसाद इस बात का स्पष्ट संकेत करते हैं कि मनुष्य की भोगवादी प्रवृति का परिणाम भयानक विनाश ले आने वाला है। जो स्थितियां हम आज झेल रहे हैं कामायनी में इसकी आशंका बहुत पहले व्यक्त की जा चुकी थी। केदारनाथ में आई भीषण आपदा से लेकर देश-दुनिया के विभिन्न हिस्सों में जलवायु परिवर्तन की जो घटनाएं घट रही हैं वे प्रकृति के साथ निरंतर की जाने वाली छेड़-छाड़ का नतीजा है। मनुष्य ने अपने को सर्वशक्तिशाली समझते हुए अपने अनुसार प्रकृति को परिवर्तित करने की कोशिश की। लोभ के अंधेपन में मनुष्य यह भूल गया कि उससे भी ताकतवर कोई हो सकता है। उसने यह सोचा कि विज्ञान के सहारे वह

समस्त शक्तियों पर कब्जा कर सकता है। लेकिन उसका यह अहम् आज टूट चुका है ।कामायनी में प्रसाद जिस देव सभ्यता के विनाश का भयावह चित्र खींचते हैं वह भी सत्ता की वासना में प्रकृति को भी जीत लेने की कामना से ग्रस्त थी। कामायनी का प्रारम्भ चिंता सर्ग से होता है और यह अनायास नहीं है। यह चिंता सिर्फ देव सभ्यता के विनाश की नहीं है बल्कि यह आधुनिकता के आलोक में बनते पूँजीवादी राष्ट्रों के भविष्य की चिंता है। "ध्यान रहे कि प्रसाद जी के सम्मुख उनके अपने 'आज' की ही दुनिया थी। वे इस 'आज' की वास्तविकताओं से इतने ज्यादा परिचित थे कि, स्वयं भारतीय कीर्ति के उद्गाता होकर भी, राष्ट्रीय उत्थान और साम्राज्यवाद-विरोधी वायुमंडल के बावजूद, इस बात को कतई न भूल सके कि यह नवीन पूँजीवादी समाज और राष्ट्र भयानक रोग से ग्रस्त है।"[1] कामायनी में आधुनिक पूँजीवादी जीवन की समस्याओं की स्पष्ट पहचान दिखाई पड़ती है जिसमें सबसे बड़े रूप में प्रकृति चिंतन को जगह मिलती है। पूँजीवादी सभ्यता प्राकृतिक संसाधनों के बेलगाम शोषण की प्रक्रिया पर आधारित है। तकनिकी विकास ने उसे वे हथियार उपलब्ध करवाए हैं कि उसे भ्रम हो गया है कि वह प्रकृति का नियंता है।चिंता सर्ग में प्रलय के पश्चात मनु देव सभ्यता के अवशेष के रूप में भोग-आधारित उस सभ्यता का पुनरावलोकन करते दिखाई पड़ते हैं ।समस्त सुखों को अधीन कर लेने की प्रक्रिया में देव-सभ्यता प्रकृति के अस्तित्व को लगभग भूल सी गई थी। जो अपने दंभ में अपने आप को अमर मान चले थे, प्रकृति के प्रत्यावर्तन में वह सारा सुख नींद में देखे गए सपने की तरह समाप्त हो गया-

" प्रकृति रही दुर्जेय,पराजित हम सब थे भूले मद में,
भोले थे,हाँ तिरते केवल सब विलासिता के नद में।
वे सब डूबे,डूबा उनका विभव,बन गया पारावार,
उमड़ रहा था देव सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार।'[2]

वासना के मद में डूबी देव सभ्यता यह भूल चुकी थी कि यहाँ कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। अपनी शक्ति के आगे उन्होंने प्रकृति को भी विजित कर लेना चाहा। एक ऐसी सभ्यता जिसने भोग को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया हो, उसका जीवन-काल बहुत लंबा नहीं चल सकता। प्रकृति का सौम्य रूप जितना खुबसूरत है, रौद्र रूप उतना ही भयानक है। जब हम सुख में होते हैं तो दुःख के स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर पाते। देवताओं ने अपने पैरों तले प्रकृति को भी रौदने का प्रयास किया जिसका परिणाम महाप्रलय था –

''शक्ति रही हाँ शक्ति ---प्रकृति थी पद-तल में विनम्र विश्रांत,
कँपती धरती उन चरणों से होकर प्रतिदिन ही आक्रांत !
स्वयं देव थे हम सब, तो फिर क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि ?
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।''[3]

जब कामायनी की रचना हुई थी तब पर्यावरण-संकट जैसी कोई विशेष स्थिति हमारे सामने नहीं थी, इसलिए आज जिस तरह का पर्यावरण विमर्श चल रहा है ,वैसी अपेक्षा हम कामायनी से नहीं कर सकते लेकिन प्रकृति अपना बदला कैसे लेती है इसके स्पष्ट संकेत हमें वहाँ मिलते हैं। पर्यावरण के संकट से उबरने का रास्ता पर्यावरण से ही होकर गुजरता है। मनुष्य ने जैसे-जैसे उन्नति की उसे इस बात का अहम हुआ कि वह ज्ञान-विज्ञान से कुछ भी कर सकता है लेकिन दुनिया के तमाम हिस्सों में घट रही भयानक पर्यावरणीय घटनाओं ने यह साबित कर दिया कि यदि आप पर्यावरण को संरक्षित नहीं करेंगे तो आप भी सुरक्षित नही बचेंगे भले ही आपने कितना भी तकनीकी विकास कर लिया हो। मनुष्य जितना ज्यादा उस पर अधिकार करने की कोशिश करेगा प्रकृति उतनी ही तीव्रता से अपने आप को स्वछन्द करेगी।

मिथकीय कथा को आधार बनाते हुए जयशंकर प्रसाद स्वयं इसे रूपक कहते हैं और मनु,श्रद्धा और इड़ा को विशेष प्रतीक के रूप में चित्रित करते हैं ,लेकिन कामायनी को पढ़ते हुए यह महसूस किया जा सकता है कि प्रसाद ने जिस रूप में उन्हें प्रस्तुत करना चाहा था ये प्रतीक उस दायरे से आगे बढ़ चुके हैं। प्रसाद अपनी दार्शनिक चेतना के अनुरूप कामायनी का सुखद अंत करते हुए सत-चित-आनंद को प्रतिष्ठित करते हैं,लेकिन आज कामायनी को पढ़ते हुए पाठक का ध्यान सबसे पहले उसमें निहित पर्यावरणीय चेतना की ओर जाता है। देव सभ्यता के विनाश का कारण उनकी असीम भोगवादी प्रवृत्ति थी लेकिन जो नई सभ्यता आ रही थी वह भी इससे मुक्त कहाँ थी और इसीलिये मुक्तिबोध कामायनी को सभ्यता-समीक्षा कहते हैं। "...कामायनी एक आधुनिक काव्य है, जिसमें आधुनिक प्रवृत्तियों, तथ्यों तथा प्रश्नों को उपस्थित किया गया है। चूंकि इन आधुनिक तत्वों को विशाल फैंटेसी (तथा उसके भीतर अनेक अन्य फैन्टेसियों) में घुला-मिला दिया गया है तथा वर्तमान जीवन से आकर्षक दूरी पैदा की गई है, इसलिए कामायनी हमें ऐतिहासिक महाकाव्य-जैसी कुछ मालूम होती है।"[4] कामायनी की रचना भारत में अंग्रेजी राज के चरमोत्कर्ष के समय होती है। अंग्रेजों द्वारा अपने फायदे के लिए अनेक प्रकार के उद्योगों की स्थापना के साथ ही यहाँ के धन-संसाधन को निरंतर लूटने की प्रक्रिया जारी थी। इसलिए पूंजीवाद भी यहाँ उस तरह से नहीं आया जैसा दुनिया के अन्य हिस्सों में आया। भारत में आया पूंजीवाद शुरू से ही शोषण पर आधारित था। ब्रिटिश शासन की साम्राज्यवादी भावना ने शोषण की संस्कृति कायम की जो पूर्णतः निरंकुश थी। प्रसाद कामायनी में इस तथ्य को स्थापित करते हैं कि सामंती सभ्यता तो अपनी भोगावादिता और विलासिता के कारण नष्ट हुई लेकिन जो आने वाली सभ्यता है वह भी अधिकार और शासन की असीम आकांक्षा से ग्रस्त है। 'अधिकार

सुख कितना मादक और सारहीन है'।[5] मनुष्य उसकी मादकता में फँस कर रह गया है,सार-हीनता को वह महसूस ही नहीं कर पा रहा है। नई सभ्यता में यांत्रिकता के बढ़ते दबाव को छायावाद के अन्य कवियों ने भी महसूस किया था। निराला लिखते हैं –

"'मानव जहाँ बैल घोड़ा है'
कैसा तन-मन का जोड़ा है ?
किस साधन का स्वांग रचा यह,
किस बाधा की बनी त्वचा यह
देख रहा है विज्ञ आधुनिक
वन्य भाव का यह कोड़ा है । "[6]

निराला जहाँ मनुष्यों पर पूँजीवादी आधुनिकता के प्रभाव को व्यंग्यात्मक रूप से चित्रित करते है वहीं प्रसाद एक कदम आगे बढ़कर यांत्रिकता के परिणामस्वरूप प्रकृति पर बढ़ते दबाव का चित्रण भी करते हैं –

"वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उड़ने की,
जीवन की असीम आशाएं अभी न नीचे मुड़ने की ;
अधिकारों की सृष्टि और उनकी वह मोहमयी माया,
वर्गों की खाई बन फैली कभी नहीं जो जुड़ने की।"[7]

बात आगे बढ़ाने से पहले हमें तत्कालीन भारतीय राजनीती पर भी एक नजर फेर लेनी चाहिए क्योंकि किसी भी देश के साहित्य में उसकी सामाजिक, राजनितिक, सांस्कृतिक और आर्थिक चिंताओं की अभिव्यक्ति होती है। यह सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में हो सकती है। भारतीय राजनीती के तत्कालीन दौर में महात्मा गाँधी का सर्वाधिक प्रभाव था और महात्मा गाँधी प्रकृतिवादी थे जिसका प्रमाण उनकी रचना 'हिन्द स्वराज' है। हिन्द स्वराज की रचना 1909 में ही हो गई थी जिसमें आधुनिक पूँजीवादी मशीनी सभ्यता की कड़ी आलोचना हमें दिखाई पड़ती है। हमारे चिंतन में उस समय तक ग्राम स्वराज जैसी अवधारणा आ चुकी थी जो बड़ी मशीनों की जगह मानवीय श्रम, प्रकृति के अतिशय दोहन की जगह उससे सौहार्दपूर्ण रिश्ते की वकालत करती है । यह भी सच है कि 1917 की रूसी क्रांति के बाद विश्व के सामने एक शोषण मुक्त समाज का सपना आकर ले चूका था जिसने मार्क्स द्वरा पूंजीवाद की की गई आलोचना को जन-जन तक पहुचाने का कार्य किया। प्रसाद जी के समक्ष यह सब स्थितियां मौजूद थीं और एक बात तय है कि उनके दिया गया समस्या का निदान भले यथार्थवादी न हो लेकिन समस्या की जड़ों की उनकी पहचान निर्विवाद है। यह बात कामायनी के आलोचक मुक्तिबोध भी स्वीकार करते हैं।

"कामायनी का महत्व यही है कि उसमें पूँजीवाद के ऐतिहासिक विकास की छाया मनु के रूप में बराबर चलती जा रही है। प्रसाद जी (पूँजीवादी) समाज की असंगतियों से भली भांति परिचित हैं, लेकिन उसकी विस्फोटक समस्याओं का वैज्ञानिक उपचार नहीं जानते। इस दृष्टि से रहस्य सर्ग बहुत मनोरंजक है जिसमें तर्क जगत, भाव जगत और कर्म जगत की परस्पर सामंजस्य हीनता और विषमता पूर्ण दूरी का चित्र खींचा गया है। समाज के कर्म-जगत और भाव-जगत में, और तक-जगत और भाव-जगत में कोई सम्बन्ध नहीं है। एक ही समाज में रहने वाले, एक ही समाज को जीवित रखने के लिए कार्य करने वाले दार्शनिक और मजदूर के दो जगत एक-दूसरे से कितने भिन्न और विषमता पूर्ण हैं ! इस सर्ग में पूँजीवादी समाज के तर्क-जगत, भाव-जगत और कर्म-जगत की परस्पर-विरोधिता, ह्रासोन्मुखता, और एकांगी विकास जन्य आत्म-विरोध का चित्रण बहुत स्पष्टता पूर्ण और गहरी सच्चाई के साथ किया गया है।''[8]

कोई भी बड़ा रचनाकार किसी भी कथा को अपने समय-सन्दर्भों में देखने और रचने की कोशिश करता है, कामायनी की रचना में प्रसाद भी यही करते हैं। कामायनी की कथा का आधार भले ही पौराणिक है लेकिन इसे प्रसाद एकदम आधुनिक सन्दर्भ में अभिव्यक्त करते हैं। इसका फलक बहुत विस्तृत है। प्रसाद सामन्ती शासन व्यवस्था के पश्चात आई हुई ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन पद्धति की सीमाएं भी पहचान रहे थे। वे यह बखूबी समझ रहे थे कि ऐसी कोई भी शासन पद्धति जो विषमता से ग्रस्त होगी वह मानव समाज के लिए हानिकर होगी। इसलिए मनु,श्रद्धा और इड़ा जिस प्रतीकात्मक रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं,उसके माध्यम से प्रसाद एक संतुलित जीवन का स्वरूप निर्मित करने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं। ''प्रसाद जी संघर्ष सर्ग में आकर दो-तीन विन्दुओं पर विशेष बल देते हैं-

1. मनुष्य और प्रकृति एक है। प्रकृति से मिलजुलकर, प्रकृति के ताल-लय के अनुसार जीने का एक क्रम मनुष्य को चाहिए।
2. प्रकृति के ऊपर मनुष्य का जो आधिपत्य चल रहा है, वह अनुचित है। मनुष्य मनुष्यों के ऊपर भी अन्याय कर रहा है। इन सब को पहचानते हुए एक नवीन जीवन प्रणाली को रूपायित कर लेने की दृष्टि आधुनिक मनुष्य की अनिवार्यता है।
3. मनुष्य केवल मनुष्य के बारे में सोचता है। इसलिए मनुष्य-निर्मित मूल्यों को ही स्थान मिल रहा है। यह नजरिया गलत है । मनुष्येतर प्राणियों के आतंरिक मूल्यों को भी मानना चाहिए।"[9]

कामायनी का आशा सर्ग यह प्रमाणित करता है कि बड़ी से बड़ी आपदा के बाद भी प्रकृति ही अपने आप को पुनर्जीवित करती है। वह फिर उसी तरह सृजन की विराट आकांक्षा के साथ एक नई सृष्टि का निर्माण करती है। सारे तकनीकी विकास के बावजूद मनुष्य के भीतर इतनी शक्ति नहीं है कि वह प्रकृति को पुनर्स्थापित कर सके। पर्यावरण संकट से उबरने का रास्ता पर्यावरण-संरक्षण ही है। हम विज्ञानं के किसी चमत्कार से किसी नदी,किसी जंगल या किसी पहाड़ को पैदा नहीं कर सकते। कहा जाता है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और यह परिवर्तन जब प्रकृति द्वारा स्वयं पैदा किया जाता है तब तो कल्याणकारी होता है लेकिन जब मनुष्य उसमें छेड़-छाड़ करने की कोशिश करता है तो उसके परिणाम भयानक होते हैं। आशा सर्ग में प्रसाद लिखते हैं –

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हंसने फिर से,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में शरद-विकास नए सिर से।

XXXXXXXXXXXX

विश्वदेव सविता या पूषा सोम,मरुत चंचल पवमान ,
वरुण आदि सब घूम रहे हैं ,किसके शासन में अम्लान ?
किसका था भ्रू-भंग प्रलय सा जिसमें ये सब विकल रहे,
अरे! प्रकृति के शक्तिचिन्ह ये फिर भी कितने निबल रहे !
विकल हुआ सा काँप रहा था,सकल भूत छटन समुदाय,
उनकी कैसी बुरी दशा थी वे थे विवश और निरुपाय।
देव न थे हम और न ये हैं सब परिवर्तन के पुतले
हाँ,कि गर्व रथ में तुरंग सा, जितना जो चाहे जुत ले।"[10]

कामायनी में चिंता से लेकर आनंद तक सभी पंद्रह सर्गों में प्रकृति की उपस्थिति देखी जा सकती है।चिंता से आनंद तक की यह यात्रा एक सभ्यता-यात्रा है। सामन्ती सभ्यता के पतन के साथ कामायनी की शुरुआत होती है और नवागत पूँजीवादी सभ्यता की विफलता इस यात्रा का चरमोत्कर्ष है। इस पूरी यात्रा के दौरान प्रसाद जिस एक तथ्य को निरंतर रेखांकित करते चलते हैं –

"हाँ ! अब तुम बनने को स्वतंत्र
सब कलुष ढालकर औरों पर रखते हो अपना अलग तंत्र
द्वंदों का उद्गम तो सदैव शाश्वत रहता वह एक मंत्र
डाली में कंटक संग कुसुम खिलते मिलते हैं नवीन
अपनी रूचि से तुम बिंधे हुए जिसको चाहे ले रहे बीन
तुमने तो प्राणमयी ज्वाला का प्रणय-प्रकाश न ग्रहण किया
हाँ जलन वासना को जीवन भ्रम तम में पहला स्थान दिया
अब विकल प्रवर्तन हो ऐसा जो नियति-चक्र का बने यंत्र
हो शाप भरा तब प्रजातंत्र।" [11]

निष्कर्ष

कामायनी विलीन हो चुकी देव सभ्यता की समीक्षा के आइने में आधुनिक जीवन-पद्धति पर एक गहरा विमर्श प्रस्तुत करती है। दुनिया के वैविध्यपरक स्वरूप में प्रत्येक कण का महत्व है। एक पर्यावरण में रहने वाले समस्त प्राणियों का जीवन एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। यदि किसी एक को नुकसान होगा तो उसका असर निश्चित रूप से दूसरे पर होगा। इसका परिणाम भयानक आपदाओं से लेकर अवसाद जैसी बीमारियों तक विस्तृत है। मनुष्य विकास की अंधी दौड़ में यह भूल जाता है कि वह भी प्रकृति का एक अंग है , उसका अस्तित्व भी उन्हीं सब चीजों पर निर्भर है जो अन्य प्राणिजगत के लिए आवश्यक है। प्रसाद बार-बार स्मृति लोप से बचने की सलाह देते हैं, नई पूँजीवादी सभ्यता की यह भी एक बड़ी बीमारी है,इसलिए वे अतीत और इतिहास को काव्यात्मक रूप में हमारे सामने प्रस्तुत कर ऐतिहासिक कार्यभार का निर्वाह करते प्रतीत होते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. नेमिचंद्र जैन (संपा.), *कामायनी एक पुनर्विचार* (आलेख), मुक्तिबोध समग्र भाग-5 (पुस्तक से), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-397
2. जयशंकर प्रसाद, *कामायनी*, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ 21
3. वही
4. नेमिचंद्र जैन (संपा.), *कामायनी एक पुनर्विचार* (आलेख), मुक्तिबोध समग्र भाग-5 (पुस्तक), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-221
5. जयशंकर प्रसाद, *स्कंदगुप्त*, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहबाद, 2003 पृष्ट -1
6. नंद किशोर नवल (संपा.), *निराला रचनावली भाग-2*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ-447
7. जयशंकर प्रसाद, *कामायनी*, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ 92
8. नेमिचंद्र जैन (संपा.), *कामायनी एक पुनर्विचार* (आलेख), मुक्तिबोध समग्र भाग-5 (पुस्तक से), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-392
9. के. वनजा, *इको –फेमिनिज्म*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2013 पृष्ठ संख्या -85
10. जयशंकर प्रसाद, *कामायनी*, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ 26
11. वही, पृष्ठ 79